Chapter-7

सप्तम् अध्याय

साखियों का रूप विधान

अंगों में विभाजन,   विभिन्न रूपों में प्रयोग,   स्वतंत्र रूप में प्रयोग, कहावतों में प्रयोग

शिल्प विधान

कई काव्य शास्त्रीय विद्वानों का यह अभिप्राय रहा है कि संतों और भक्त कवियों की मुक्तात्मक रचनाओं में काव्य सौन्दर्य विधायक उपकरणों का अभाव होता है । इस कारण ऐसे लोग, ऐसे कवियों की मुक्तात्मक काव्यों में अन्तर्निहित काव्यात्मक सौन्दर्य की खोज करते ही नहीं इस विषय में उनका पूर्वाग्रह सा बन गया है कि दोहा - सोरठा - साखी - चौपाई जैसे लघु काव्य रूपों में प्रतीकात्मक शैली वैविध्य, अलंकार योजना, बिम्ब विधान का अभाव होता है । किन्तु कबीर की उक्ति के अनुसार -

"जिन ढूंढा तिन पाइया, गहरे पानी पैठ"

इनको ऐसे लघु काव्य रूपों में भी काव्य सौन्दर्य सरिता बहती दिखाई पड़ती है । मैंने सधैर्य और सहानुभूति पूर्वक उपलब्ध साखियों का मनोयोग से अध्ययन किया तो मुझे उनमें सुन्दर शिल्प विधान के विविध उपकरणों की प्राप्ति हुई ।

अध्ययन की सुविधा के लिए शिल्प विधान को रूप विधान, भाषा समीक्षा और शैली वैविध्य नामक तीन अध्यायों में विभक्त किया गया है ।

साखी का रूप विधान :

छन्दों के दो प्रकार माने जाते हैं - (1) वैदिक, (2) लौकिक छन्द । लौकिक छंद के दो प्रमुख भेद हैं । एक का नाम "वर्ण छन्द" है और दूसरे का नाम "मात्रा छन्द" है । वर्ण छन्दों को "वृत्त" और मात्रा छन्दों को "जाति" नाम भी दिया जाता है । मात्रा या जाति छन्दों में सम, अर्धसम और विषम इस प्रकार के तीन भेद दिए जा सकते हैं ।

जगती में कुल 48 अक्षर तथा 12 - 12 अक्षरों के चार पाद होते हैं । त्रिष्टुप को, जिसमें 46 अक्षरों की 12 - 12, 11 - 11 के रूप में योजना होती है उसे जगती का भेद माना गया है तथा उसे उपजगती नाम दिया गया है ।

अगर किसी पाद में कोई अक्षर कम हो जाता है या बढ़ जाता है तो उसके नामकरण में अन्तर पड़ जाता है । जगती के पादों में भिन्नता आने के कारण उसे पुरस्ताज्ज्योतिष्मती जगती और उपरिष्टाज्ज्योतिष्मती जगती कहा गया है । छः पादों वाली जगती को षट्पदा महापङ्क्ति जगती कहते हैं ।

इस प्रकार संस्कृत के मंत्रों में वास्तविक निर्दिष्ट अक्षर संख्या की अपेक्षा न्यूनता या अधिकता भी पाई जाती है । एक या दो अक्षरों की न्यूनता या अधिकता होने पर छन्द वही रहता है । एक अक्षर की न्यूनता होने पर छन्द निचृद कहलाता है । एक अक्षर की अधिकता होने पर वह छन्द भुरिग विशेषण से व्यपदिष्ट होता है । दो अक्षरों की न्यूनता होने पर कोई छन्द विराड तथा दो अक्षरों की अधिकता होने पर कोई छन्द स्वराड कहलाता है ।

उपर्युक्त प्रमाणों को ध्यान में रखकर साखी के रूप विधान पर विचार किया जाय तो यह निष्कर्ष निकल सकता है कि साखिकारों ने अपनी रचनाओं में जो परिवर्तन किया है या रचनाप्रक्रिया में स्वतः रूप से जो परिवर्तन परिलक्षित होते हैं उनका आधार या कारण शायद ये संस्कृत के छन्द हैं । संस्कृत भाषा उच्चवर्ग के लोगों की भाषा होने पर भी साधु संत भगवत भजन के समय संस्कृत के कुछ सुभाषित परम्परा से प्रभावित हुए थे और उसी के परिणाम स्वरूप इस भाषा का छन्द भी उनकी रचना प्रक्रिया का माध्यम बन गया हो ऐसा हो सकता है । साखी का जो मूल रूप है कालान्तर में उसमें भी भिन्नता आ गई । छन्दस्वरूप का परिवर्तन प्राचीन समय से ही रहा है । अर्ध साखी, सलोक, मराठी चालनी साखी और छः पदों वाली साखियाँ इसका उदाहरण है और अनेक ऐसे परिवर्तन भी हैं जिनका कारण देश की काव्य रूप परम्परा तथा भाषा परम्परा भी सम्भव माना जा सकता है ।

साखी रचना के जो पिंगलशास्त्रीय नियम है उनके सिवाय भी अगर संस्कृत के छन्द शास्त्र के नियमों की दृष्टि से देखा जाय तो एक या दो वर्णों के कम होने पर हम उस साखी को "निचृय साखी" कह सकते हैं या नहीं यह जांच का विषय है । अधिकांशतः साखी के रचयिताओं ने इस विषय को विशेष महत्व नहीं दिया कि साखियों की रचना में उसकी अक्षरों की संख्या प्रत्येक पाद में

13 - 11, 11 - 13 होनी चाहिये । बल्कि उन्होंने उसमें निहित भावों के प्रवाह की ओर अधिक ध्यान दिया । अतः पिंगल शास्त्रों के नियमों को मानना उनके लिए कहीं-कहीं असुविधाजनक रहा होगा ।

प्रायः प्रत्येक साखी में अक्षरों की संख्या कमोवेश दृष्टिगोचर होती है । गुजरात के साखिकारों ने अपनी रचनाओं में अक्षरों की निश्चित क्रम योजना पर अधिक ध्यान नहीं दिया है उनका मूल उद्देश्य उपदेश तथा हितवचन होने के कारण कम से कम शब्दों में उसे व्यक्त करना ही मूल उद्देश्य माना है । लेखक के इस प्रकार की रचनाओं को हम अगर संस्कृत छन्द शास्त्र के नियमों के अनुसार "निचृद"साखी" अथवा विषयमूलक साखी या "भूरिक साखी" कहना चाहें तो हमारे विचार से यह उपयुक्त होगा ।

संत कवि रविदास गुजरात के महान संत थे उनके द्वारा रचित साखियाँ ज्ञान और धार्मिक उपदेशों से पूर्ण हैं । उनकी एक साखी, जिसमें माया के नटी रूप का वर्णन हैं हमारे विचार से "निचृद साखी" नाम दिया जा सकता है ।

"माया जगमां छे नटी, तेहनो मर्म न जाणे शेष,
कहे रवीदास गो जितीए, जो होये सतगुरू उपदेश ।[1]"

साखी के प्रत्येक पाद में वर्णों की संख्या 24 होती है परन्तु रविदास रचित इस साखी के प्रथम पाद में वर्णों की संख्या 18 है और द्वितीय पाद में वर्णों की संख्या 21 है । अतः इसमें वर्ण पिंगल शास्त्र के नियम से युक्त नहीं है । परन्तु संस्कृत छन्द शास्त्र के नियमों के अनुसार हम इसे"निचृद छंद" का नाम दे सकते हैं। अर्थात् अगर हम इसे"निचृद साखी" का नाम दें तो उपयुक्त होगा । हालांकि कवि ने इसे केवल "साखी" नाम से ही सम्बोधित किया है ।

----

१1१ रविसाहब नी साखियाँ - १पृ0 10१

पिंगल शास्त्रियों द्वारा अनुष्टुप के तीन भेद किए गए हैं :-

(1) समानी - जिसमें गुरु लघु वर्ण क्रम से आते हैं।

(2) प्रमाणी - जिसमें लघु गुरु वर्ण क्रम से आते हैं।

(3) वितान - जिसमें लघु गुरु या गुरु लघु वर्णों का क्रम उपरोक्त क्रम से नहीं होता है।[1]

इनके भी अनेक भेद होते हैं परन्तु विषय विस्तार से बचने के उद्देश्य से उनका प्रयोग यहाँ नहीं करेंगे।

अनुष्टुप के इन भेदों के आधार पर हम साखियों के भेद प्रभेदों के निर्देश कर सकते हैं। निम्नलिखित रूप से इनके भेद किए जा सकते हैं -

(1) समानी साखी,

(2) प्रमाणी साखी और

(3) वितान साखी का नाम दे सकते हैं।

साखियों के चरणों में गुरु - लघु के क्रमानुसार "समानी साखी" का एक सुन्दर उदाहरण दयाराम की साखी में मिलता है -

भ्रमण भेद को छेद, गृह शृंखल वंधित हे,
चाहिते कबु होईनां, सो टारत नहीं कैद।
- दयाराम रसधाल -(पृ.231)

दयाराम ने संस्कृत छन्द परम्परा के नियमानुसार उपरोक्त साखी में गुरु लघु वर्ण व्यवस्था को इस प्रकार से समाया है कि इसे "समानो साखी" का नाम दिया जा सकता है।

इसी प्रकार प्रमाणी साखी और वितान साखी नाम का भी प्रयोग गुजरात के संतों द्वारा रचित उनकी साखी रचनाओं में किया जा सकता है।

विभिन्न पिंगलाचार्यों द्वारा दी गई साखी की परिभाषाओं का अध्ययन करने के पश्चात् साखी का रूप निम्नलिखित निश्चत होता है :-

----

[illegible] पृ.136)

(1) यह एक वार्णिक छन्द है ।

(2) यह एक अर्ध सम वार्णिक छन्द है ।

(3) इसमें चार चरण होते हैं, जो प्राय: दो पंक्तियों में लिखी जाती है ।

(4) पहला और तीसरा चरण विषम चरण कहलाता है क्योंकि वहाँ तुक नहीं मिलती ।

(5) दूसरा और चौथा "सम" चरण कहलाता है क्योंकि वहाँ तुक होता है ।

(6) कुल 48 वर्णों का यह छन्द होता है ।

यह रूपात्मक परिचय मूल "साखी" का ही है । इस रूपात्मक मूल "साखी" के अतिरिक्त चरण, गति, प्रस्तार आदि को लेकर अनेक अन्य रूप भी बनाए जा सकतेहैं ।

वर्णानुसार साखियों में भेद होता है । साखी एक अर्धसम वार्णिक छन्द होने के कारण वर्णों के लघु-गुरु सिद्धान्त के अनुसार उनके बढ़ते-घटते अनुपात से साखियों के लय गति आदि में प्रभाव पड़ता है । उदाहरण के लिए यदि साखी के सभी वर्ण लघु रखे जाय तो साखी छोटी होगी । अत: कवि विषयानुकूल वर्णों का चुनाव करता है । कभी-कभी गुरु-लघु दोनों मिलकर भी साखियों की रचना की जाती है ।

साखी का रचना विधान :

संतों ने अपने अनुभवों को व्यक्त करने के लिए जिन काव्य रूपों को माध्यम बनाया है उनमें साखी, सबद, कक्का, गरबी-गरबा, धोल आदि विख्यात हैं । यहाँ हम केवल "साखी" का विस्तार से विवेचन करेंगे ।

साखी का अर्थ बताते हुए डॉ० राजदेवसिंह लिखते हैं कि साक्षी अर्थात् गुरु का उपदेश ही इसका मूल अर्थ है । उन्होंने आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के

अनुमान को स्पष्ट करते हुए लिखा हैं "शुरू-शुरू में गुरू के सभी उपदेशों को चाहे वह किसी भी छन्द में लिखे गये हो" "साखी" कहा जाता होगा । बाद में दोहा छन्द में लिखी वाणियों का साखी नाम रूढ़ हो गया ।[1]

﴾अ﴿ <u>दोहा और साखी</u> :

साखियों में सर्वाधिक प्रयोग दोहा छन्द का है । अत: डॉ० नजीर मुहम्मद के अनुसार साखी को दोहे का ही एक रूप मान लेना अनुचित न होगा । संतों के नीति प्रधान दोहे ही साखी कहे गये हैं । दोहा छन्द नीति और उपदेश के तथ्यों को शीघ्रतापूर्वक प्रकट करने में अत्यन्त सफल है ।[2]

दोहा एक अर्धसम छन्द है । इसके विषम चरणों में 13 मात्रायें और समय चरणों में 11 मात्रायें होती हैं । विषम चरण के अन्त में लघु गुरू या नगण और सम चरणों के अन्त में गुरू लघु होते हैं । विषमचरण और सम चरणों की अन्तिम तीन मात्राओं के पहले की समस्त मात्रायें समप्रवाही होती हैं । दोहे के पहले और तीसरे चरण के आदि में जगण ﴾। ।﴿ वर्णित है ।[3]

दोहे का छन्द रूप सम्भवत: 14 श० में स्थिर हुआ जब "प्राकृत पैगंलम" में 13, 11 मात्राओं का क्रम निर्देशित हुआ और लघु गुरू अक्षरों के आधार पर उसके 23 भेद बताये गये हैं ।[4]

गुजरात के संतों द्वारा रचित साखियों में प्राय: इस परम्परा का निर्वाह हमें मिलता है क्योंकि संतों के छन्दोनुशासन का अध्ययन निमित्त मात्र था।

﴾1﴿ प्राचीन काव्य संग्रह - सं० राजदेवसिंह - भूमिका

﴾2﴿ कबीर के काव्य रूप - डॉ० नजीर मुहम्मद - ﴾पृ० 60﴿

﴾3﴿ कबीर के काव्य रूप - डॉ० नजीर मुहम्मद - ﴾पृ० 109﴿

﴾4﴿ सिद्ध साहित्य - डॉ० धर्मवीर भारती - ﴾पृ० 293﴿

हेमचन्द्र के छन्दोनुशासन से ज्ञात होता है कि उस समय 13 + 12 मात्राओं की परम्परा चल रही थी और इसके लक्षण 13 + 12 होने पर भी उन्होंने उदाहरण में 13 + 12 मात्राओं का ही निर्देश दिया है । भारतीभी जी का कहना है कि "प्राकृत पैंगलम" में 13 + 12 के क्रम को मान्यता दी गई है और अन्य दो रूप भुला दिए गए ।[1]

§आ§ <u>लावणी, गजल, साखी</u> :

डॉ० श्याम सुन्दरजी के अनुसार साखी जो कि दोहा छन्द में होती है उसमें तुक का एक विशेष महत्व है । लावणी और गजल में भी तुम की प्रधानता होती है । तुकात्मक होने के कारण इनमें लय प्रधान होता है । अगर विषय वस्तु की दृष्टि से इनकी तुलना की जाय तो गजल और साखी एक दूसरे के निकट प्रतीत होते हैं । साखी जो कि अध्यात्मभाव से ओत-प्रोत होता है कहीं-कहीं गजल और लावणी में भी यह भाव प्रतीफलित होने का प्रघात देखा जाता है । कभी-कभी ऐसा लगता है कि एक ही छन्द अलग-अलग नामों और रूपों से अलग-अलग भाषा में व्यवहृत हुआ है ।

जैसे कि दोहा को कहीं-कहीं साखी भी कहते हैं अर्थात् साखी के रूप में हिन्दी में उसका प्रयोग दिखाई पड़ता है । "मराठी छन्दोरचना ना विकार" के लेखक ना०ग० जोशी जी लिखते हैं कि मराठी का "साकी" शब्द रूप रचना की दृष्टि से हिन्दी साखियों से मिलता जुलता दिखाई पड़ता है । इसी भाँति गजल में जिनका उपयोग होता है वह शेर भी दो पंक्तियों का होने के कारण दोहा और साखी के करीब सा लगता है । उसी प्रकार लावणी में भी दो-दो पंक्तियों का युग्म होता है । जिसे प्रलम्ब रूप से लयबद्ध करके गाया जाता है । लावणी मूलत: एक ताल

----

§1§ सिद्ध साहित्य - §डॉ० धर्मवीर भारती§ - §पृ० 295§

ही है जिसे अष्टकल में निबद्ध किया जाता है । एक दूसरे के पार्श्व में देखने पर कहने को मजबूर होना पड़ता है कि इन सबके पारस्परिक संबंध का और शिल्प विधान की खुबियों का कोई स्त्रोत रहा हो ऐसा जान पड़ता है ।

भगवद्‌गोमंडल के आठवें भाग में लावणी के बारे में चर्चा की गई है । इसमें लावणी को एक ताल कहा गया है जिसमें आठ मात्राएं होती हैं और ताल तीन होते हैं । पहली तीसरी और सातवीं के ऊपर ताल पड़ती है और पांचवी खाली जाती है । यह ताल शिष्ट संगीत का न होकर दक्षिण का एक देश्य ताल है । इसमें दक्षिण में धुमाली ताल कहते हैं । ऐसा भी कहा जाता है कि दादरा और ऐमटा की पद्धति द्रुत पद्धति करने पर यह इस लावणी का ताल होता है ।[1]

गजल कोई छन्द नहीं है एक काव्य प्रकार है । साखी भी एक काव्य प्रकार है । दोनों में चार-चार चरण अर्थात् दो-दो पंक्तियाँ होने का साम्य है। हालांकि गजल का "अरबी भाषा" में जो अर्थ किया गया है वह है स्त्रियों के साथ प्रेम युक्त भाषा में काव्यात्मक ढंग से बोलना ।

आरम्भ में जब गजलें गाई जाती थी तो उनका सूफियाना रंग था यानी उनका संकेत परम पिता परमेश्वर ही की तरफ था, गजल गायकों के प्रेम पात्र वही थे और उस समय के गजल का "दाखिली" ‡अंतरंग‡ पहलू यही था । उनका माशूक ईश्वर ही था और गजल गायक आशिक था । खुसरो और ख्वाजामीर दर्द की गजलों में जिस भक्ति भाव का आभास होता है उसे हम मीरा बाई के पदों में देख सकते हैं जिसे उन्होंने अपने प्रेमपूर्ण भाव से कृष्ण को लेकर लिखा था । गालीब और इकबाल की गजलें ईश्वर भक्ति से ओत-प्रोत हैं । उनकी गजलों में वह गम्भीरता होती है जो हम हमारे महान संत कवि कबीर, अखा, दयाराम आदि की साखियों में देख सकते हैं ।

----

‡1‡ भगवद्‌गोमंडल - ‡पृ0 7787‡

साखी की भाँति गजल की दो-दो पंक्तियों में भिन्न-भिन्न भाव होते हैं । अर्थात् एक ही विचार या भाव एक ही "बेत" में समा जाता है । मतलब यह कि पूरी गजल में किसी एक ही विचार का अध्ययन निरूपण नहीं भी होता । साखियों में भी यही बात देखने को मिलती है । प्रत्येक साखी का विचार भाव अलग होता है ऐसा भी कई बार देखने में आता है ।

साखी का अर्थ स्त्रियों के साथ प्रेमपूर्वक तथा काव्यात्मक ढंग से बातचीत करना नहीं होता । इसमें तो प्रायः ब्रह्मसाक्षात्कार के कारण ब्रह्म-स्वरूप का निरूपण, ब्रह्मानंद की अभिव्यक्ति आदि का स्वानुभूतियों के आधार पर निरूपण होता है । मुस्लिम सूफी संतों ने आशिक-माशूक के प्रेमालापों का जो निरूपण किया है उसका अनुकरण हिन्दू संतों ने अपनी मधुर एवं रहस्यपूर्ण अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए किया है ऐसा प्रतीत होता है । ##

कई गजलें ऐसी भी होती हैं जिनमें आद्योपांत कोई एक विशेष भाव प्रवाह देखने को मिलता है । साखियों में भी यही बात देखने को मिलती है । कवि के अन्तर में जब कोई भाव या विचार जागता है तब वह उसे दो-दो पंक्तियों के रूप में व्यक्त किए चलता है जब तक वह विचार भाव पूर्ण न हो ।

गजल को द्विदल छंद भी कह सकते हैं । अर्थात् दो-दो पंक्तियों की कड़ी या बेतों की बनी हुई रचना होती है । पंक्ति या बेत के प्रत्येक चरण को "मिश्रा" कहते हैं । इस मिश्रा को शायरी का रचयिता तुक भी कहते है । दो मिश्रा या तुक का निर्वाह करनेवाली पंक्तियों को "शेर" कहते हैं । गजल के शेर में रदिफ और काफिया का निर्वाह अनिवार्य होता है । जबकि साखी में दोनों का होना अनिवार्य नहीं होता । साखियों में प्रायः तुक या रदिफ ही मिलता है । कहीं कहीं किसी साखी में रदिफ के आगे काफिया का आभास होनेवाले शब्द मिलते हैं किन्तु इन्हें हम काफिया नहीं कह सकते ।

कवि नरमणी द्वारा लिखी गई साखियाँ और उनके मध्य गजल लिखने की परम्परा का आभाव मिलता है । उनके द्वारा लिखी गजलें अध्यात्मभाव निरूपित करती हैं । "कवि नी कदर" नामक लेख का आरम्भ हरिगीत नामक छन्द से किया है फिर एक गजल लिखकर और बाद में एक साखी लिखी है । इस प्रकार कवि नरमणी ने एक गजल और साखी लिखकर दोनों में एक साधारण साम्य को प्रदर्शित किया है । साम्य शिल्प की दृष्टि से नहीं कथ्य की दृष्टि से । दोनों में कथ्यगत समानता देखने को मिलती है। अतः हमें ज्ञात होता है कि गजलों में भी अध्यात्म निरूपण की विधा मिलती है और इसका प्रयोग गुजरात के संतों ने पुष्कर परिमाण में किया है ।

बीसवीं सदी में "आजाद गजल" (Modern Gazal) की प्रथा आरम्भ हुई जिसे "जहीद गजल" भी कहते हैं । इसमें रदिफ का होना आवश्यक नहीं माना जाता है । कहीं-कहीं काफिया का भी संतुलन नहीं होता परन्तु तुक का होना आवश्यक है । एक शेर में एक मानी का होना जरूरी होता है । जिससे गजल में पूर्णता आती है । यही परम्परा साखी में भी मिलती है ।

(इ) <u>आर्या, सोरठा, साखी</u> :

आर्या एक प्राचीन छंद है । अधिकांश प्राकृत साहित्य इसी भाषा में लिखा गया है । संस्कृत साहित्य में भी इस छन्द का प्रयोग हुआ है । साखी की तरह यह भी द्विदल है । पिंगलाचार्य राम नारायण पाठक जी के अनुसार आर्या का गीत पठन प्रलंबित स्वर से और नियत संख्या की मात्रा से किया जाता है । यह गीत पद्धति गुजरात और महाराष्ट्र में देखी जाती है ।[1] साखियों में भी यही विधा परिलक्षित होती है ।

---

(1) बृहत् पिंगल - पाठक - (पृ0 43)

भगवद्गोमंडल में आर्या की चर्चा करते हुए लिखा गया है कि यह चार चरण का एक छन्द है । पहले चरण में 12, दूसरे चरण में 18, तीसरे में 12 और चौथे में 15 मात्रायें होती हैं । इसकी गीति, उपगीति आदि अनेक जाती है ।[1]

आर्या की चर्चा करते हुए वामन शिवराम आपटे लिखते हैं -

यस्या: पादे प्रथमे द्वादशमात्रा स्तया तृतीयेपि ।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थ के पंच दश सार्या ।।

'The first and the third quarters must each contains
'12 matras or syllabic instants (one being allotted
'to a short vowel, and two to a long one), the second
'18, and the fourth 15.[2]

मात्राओं में भिन्नता होते हुए भी इसमें चार चरण और दो दल होते हैं। अत: आर्या छन्द की रचना विधान हेतु साखी की रचना विधान साम्य रखने के कारण विषय वस्तु में भिन्नता होने पर भी काफी नजदीक है ।

सोरठा काफी हद तक साखी से मिलता जुलता छन्द है । इसके चार चरण और दो पंक्तियों की रूप रेखा के कारण यह साखी के समान प्रतीत होता है । इसके पहले और तीसरे चरण में ग्यारह तथा दूसरे और चौथे चरण में तेरह मात्राएं होती है । दोहे का उलटा सोरठा है । अत: इसमें तुक योजना विषम चरणों में होती है । समचरण बे तुके होते हैं । साखी की रचना इसी नियम से मेल खाती है । इसके चार चरण और दो पंक्तियों वाली प्रथा साखी और सोरठा को एक दूसरे के करीब लाते हैं । इससे

----

§1§ भगवद्गोमंडल - भाग 2 - §पृ0 4583§

§2§ संस्कृत इंग्लिस डिक्सनरी - आप्टे - §पृ0 10 41§

साखी और सोरठा की एकरूपता का आभास होता है । शायद इसी भाव से प्रेरित होकर देवासाहब ने अपने "रामसागर" ग्रन्थ में साखी, दोहा सोरठा का प्रयोग पर्याय के रूप में किया है ।

भगवद्गोमंडल में सोरठो के बारे में विस्तृत चर्चा की गई है कि यह एक अर्ध समजाति मात्रामेल छंद है । दोहरा के उलटने पर सोरठा बनता है। लेखक भगवतसिंह जी के अनुसार इसका असली नाम सोरठियो दुहो है ।

"ते सौराष्ट्रमा असलना बखतथी ज लांबा
सादथी ललकारी ने बोलवामां आवे छे ।"[1]

सारांशत: आर्या, दोहा, सोरठा, लावणी, गजल आदि संस्कृत तथा संस्कृतेतर भाषाओं के दो-दो पंक्तियों वाले छन्दों में जहां कहीं भी उसके प्रयुक्ता ने अपने ब्रह्म साक्षात्कार की बात की है वहां उन छन्दों को साक्षी-साखी (Witness) के रूप में पहचाना जाने लगा । साक्षात्कार के वर्णन वाली यह लघु रचना जिनको भी रुचिकर लगी उन्होंने अनुष्टुप, आर्या, सोरठा, छंदों के शास्त्रीय विधान वैविध्य को न देखकर उन्हें केवल साखी छन्द के रूप में ही पहचानना ठीक समझा और इस प्रकार दो-दो पंक्तिवाला संस्कृत और संस्कृतेतर भाषा का कोई भी छंद सामान्यत: साखी के रूप में पहचाना जाने लगा । इस दृष्टि से देखने पर साखियों का मूल अनुष्टुप, आर्या, दोहा, सोरठा जैसे छन्दों में देखा जा सकता है ।

अंगों में विभाजन :

डॉ० भरतसिंह उपाध्याय ने "ध्यान सम्प्रदायी" नामक पुस्तक में साखियों और दोहों को "अंगों में विभाजित करने के अर्थ को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। उनके अनुसार पालि तिपिटक में "अंग" शब्द का अर्थ "कारण" है । जिसके अनुसार

(1) भगवद्गोमंडल - भाग 1 - (पृ. ८९५८).

अंगों में विभाजित करने का रहस्य खुल जाता है । भिन्न-भिन्न कारणों से जो साखियाँ दी जा रही है उनका उल्लेख उस शीर्षक में कर दिया गया है । "अंग" शब्द को और भी स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है कि ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है कि संतों ने अभिज्ञान पूर्वक इसका प्रयोग किया हो ॥और यह विभाजन हुआ भी बाद में॥ परन्तु एक मौखिक और शास्त्रों से भिन्न गुरू शिष्य क्रम से संप्रेषण होने के नाते यह शब्द उपर्युक्त अर्थ में सन्त परम्परा में आ गया हो, यह असम्भव नहीं है ।

एक भिन्न अर्थ में भी कबीरदासजी ने "अंग" शब्द का प्रयोग अपनी साखियों में किया है और भरतसिंह के अनुसार यह भी बौद्ध प्रयोग है एक साखी का उदाहरण देते हुए उन्होंने कहा है कि -

निरवैरी निहकामता, साईं सेती नेह ।
विषिया सूं न्यारा रहे, सन्तनि का एह अंग ।।

यह संतों का अंग है, बौद्ध प्रयोग का एक सुपष्ट प्रमार्ण है ।

"विसुद्धिमग्ग" के द्वितीय परिच्छेद में इसके समान्तर एक पालि प्रयोग है धुतंग अर्थात् धुतांग अर्थात् अवधुतांग । इसका अर्थ है अवधूत का व्रत नियम या अभ्यास । इस प्रकार वृध मूलिकांग, एकासनिकांग, आरण्यकांग आदि तेरह प्रयोग हैं ।[1] यह वृक्षमूलिका अंग है और इसी सुर में सुर मिलाकर कबीर की तरह गुजरात के संत भी कहते हैं कि यह गुरू का अंग है, यह विरह का अंग है । इस प्रकार अंगों के प्रयोग की परम्परा बौद्ध प्रयोग है इसका अनुमान लेखक लगाते हैं ।

जिस विषय के ऊपर साखी लिखी जा रही है उसी विषय के बोध की सुविधा के लिए साखी के ऊपर उसका शीर्षक या विषय स्पष्ट किया जाता था । कौन सा विषय क्यों चलता है, उसका कारण क्या है ? अनुभूति की प्रस्तुति या निमित्ति आदि मुद्दों पर से कालान्तर में अंगों को केवल विभाजन के एक उदाहरण या टुकड़े के रूप में अर्थात् रचना विधान के एक आधार के रूप में स्वीकार करना रूढ़ सा हो गया ।

॥1॥ ध्यान सम्प्रदायी - डॉ0 भरतसिंह - ॥पृ0 148॥

"वैष्णव कबीर" के लेखक हरिहर प्रसाद गुप्त जी लिखते हैं "आचारंग सूक्त में जैन धर्म के मुख्य अंगों का निरूपण है । मनुष्य के जीवन में अहिंसा का समदृष्टि का कितना महत्व है यह उसमें प्रतिपादित है । बौद्धधर्म में अष्टांग ‡मार्ग‡ जीवन पद्धति की मीमांसा है - सम्यक विचार, सम्यक वाणी, अक्रोध आदि धर्म के प्रमुख "अंग" हैं । लक्ष्य की पूर्ति में जो सहायक है, वे अंग है ।" वेदों के अध्ययन के लिए शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छंदस, ज्योतिष षडंग बताये गये हैं अर्थात् उनकी सहायता से ही वेदों का अनुशीलन सम्भव है ।[1]

माता प्रसाद गुप्त संपादित "कबीर ग्रन्थावली" के अन्तर्गत 59 अंगों का निरूपण है जिनमें गुरूदेव, सुमिरन, विरह, परचा, माया, संगति, कुसंगति, निंदा आदि और अनेक अंगों में साखियाँ हैं । कबीर की ये साखियाँ भक्त के जीवन पद्धति से सम्बन्धित है । सतत् ईश्वरानुभूति के लिए गुरू, आत्मविश्वास, निर्भय जीवन ‡सूरता‡, सत्संग का महत्व इन साखियों में निरूपित है । कबीर महामानव थे महापुरूष थे । उनके अंग आज भी जीवन को सन्मार्ग पर ले जाने के लिए उपादेय है ।

संत काव्य के अन्तर्गत आचार्य परशुराम चतुर्वेदीजी ने अंग शब्द की चर्चा करते हुए लिखा है कि संतों के साखी संग्रह विभिन्न अंगों में विभाजित पाये जाते हैं जिनके नाम अधिकतर गुरूदेव को अंग, सुमिरण को अंग, विरह को अंग आदि रूपों में दिख पड़ते हैं । अंग शब्द का अर्थ साधारणत: शरीर अथवा उसका कोई न कोई भाग देखा जाता है । इस कारण उक्त प्रत्येक अंग को हम साखी या साक्षी पुरूष की देह अथवा उसके अवयव विशेष का बोधक साखी मान सकते हैं । इस प्रकार "अंग" शब्द से अभिप्राय यहाँ साखी-संग्रह के किसी खण्ड का होगा । परन्तु कबीर साहब ने इस शब्द का प्रयोग एक स्थान पर "लक्षण" के अर्थ में किया है । इससे सूचित होता है कि साखियों के रचयिताओं ने उक्त शीर्षकों द्वारा कतिपय विषयों का परिचय देने का प्रयत्न किया होगा । इस कथन के लिए अभी तक कोई आधार उपलब्ध नहीं कि कबीर साहब की साखियाँ आरम्भ से ही इस प्रकार विभिन्न अंगों में विभाजित थीं । इस बात के उल्लेख अवश्य मिलते हैं कि दादू दयाल की साखियों में पहले इस प्रकार का क्रम नहीं लगा था । उन्हें सर्वप्रथम ऐसे अंगों में विभाजित करने वाले उनके शिष्य रज्जबजी थे । रज्जबजी ने न केवल उनकी साखियों को ही इस प्रकार क्रमबद्ध किया, अपितु उन्होंने उनके पदों को भी विषयानुरूप विभाजित किया ।

(1) वैष्णव कबीर - हरिहर प्रसाद गुप्त (पृ. 119).

साखियों का विभिन्न रूपों में प्रयोग :

(अ) **स्वतंत्र रूप में प्रयोग :**

गुजरात के संतों ने अपनी भक्ति भावना से ओत-प्रोत होकर जिस साखी साहित्य की रचना की, वह अमूल्य है । उनके द्वारा रचित भक्ति काव्य का विस्तृत अध्ययन अनिवार्य है । इन संतों के द्वारा रचे गये साखी काव्य कुछ तो प्रबन्ध ग्रन्थों के रूप में उपलब्ध है कुछ छीट-पुट रूप में । संतवाणी, मार्गदर्शन और समाज सुधार की भावना से रची होने के कारण मूलत: संतों ने उन्हीं काव्य रूपों का प्रयोग किया है जो उनके भाव को उजागर करने में सहायक सिद्ध हो । मनोयोगपूर्वक देखने पर प्रतीत होता है कि शिक्षाप्रद ग्रन्थों को मूलत: साखी में ही लिखा गया है । साखी में भाषा का कोई बन्धन नहीं है । संतों का प्रिय काव्य रूप होने के कारण भाव विभोर होकर साखी में रचना करते समय उनके मन में इसके रचना विधान का कोई भी बोझ नहीं होता था ।

साखी की जो विशेषता संतों को प्रिय थी वह इसकी गेयता । मूलत: संतों ने गेयता के कारण ही इसका प्रयोग किया । चार चरण और दो पद होने के कारण सरलता से इसकी रचना भी हो जाती थी । जहाँ भी संत जाते थे उसी प्रदेश की भाषा का छिटपुट अंश उनकी साखियों में प्रतिफलित होता था ।

गुजरात के संतों ने कई साखी ग्रन्थ लिखे । परन्तु कुछ संतों ने फुटकल साखियाँ भी लिखी है । कई संत ऐसे भी हैं जिन्होंने विपुल परिमाण में फुटकल साखियाँ लिखने पर भी अपनी रचना का नाम "साखी ग्रन्थ" नहीं रखा । केवल "साखियाँ" लिखी हैं । उदाहरण के रूप में अखाजी द्वारा रचित साखियों की संख्या 2,000 के आसपास है परन्तु फिर भी उन्होंने अपनी साखी रचना का नाम "साखी ग्रन्थ" नहीं रखा । विभिन्न अंगों में विभाजित साखियाँ समाप्त होने पर "इति साखी सम्पूर्ण" कहकर रचना को समाप्त कर दिया । ग्रन्थ-नामकरण का

अधिकारी तो केवल रचयिता ही होता है परन्तु वस्तुगत विश्लेषण और चर्चा के लिए कुछ एक सम्बोधन की आवश्यकता होती है । यह भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता है कि कुछ साखिकारों ने अपनी रचना का नाम "साखी ग्रन्थ" रखा । जीवणदास जी ने "अकल-रमण" नामक ग्रन्थ साखी में लिखा है । प्रीतमदास, रवि साहब, देवो साहब आदि ने साखी ग्रन्थ का उल्लेख स्पष्ट रूप से किया है । संत-राम महाराज ने "गुरू बावनी" नामक ग्रन्थ लिखा जो साखियों में है ।

§आ§ विभिन्न काव्य रूपों के साथ प्रयोग :

कई संत ऐसे हैं जिन्होंने साखियों का प्रयोग भजन के आरम्भ और अन्त में, पदों के आरम्भ और अन्त में, कुण्डलियों आदि में भी साखियों का विस्तृत प्रयोग किया है ।

नरसिंह मेहता कृत रास पंचाध्यायी में चाल के पूर्व और अन्त में साखी लिखकर इस परम्परा को पुष्ट बनाया है । उदाहरणार्थ कुछ साखियाँ और चाल प्रस्तुत है -

साखी - कृष्ण चरित्र गोपी करे, बलि से राधा नार,
एक भई त्यां पूतना, एक भई जु गोपाल लाल,
एक भई जु गोपाल लालरी, तेणे दुष्ट पुतना मारी ।

चाल - एक भेख मुकुंद को किनो, तेणे तृणवत हरि लीनो
एक भेख दामोदर धारी, तेणे जमला अर्जुन तारी ।

साखी - प्रेम प्रीत हरि जीनके, आए उनके पास,
मुदित भई त्यां भातनी, गुण गावै नरसैयो दास ।[1]

---

§1§ रास और रासान्वई - तृतीय खंड - §पृ0 359§

उपरोक्त उदाहरण में साखियाँ भी छः चरण वाली हैं तथा चाल के पूर्व और पश्चात् भी साखी है इनका अवलोकन करने पर पता चलता है कि 15 श0 तक साखियों का अन्य काव्य रूपों के मध्य प्रयोग का प्रघात चल पड़ा था । साधारणतः साखियाँ चार चरणवाली होती है किन्तु विषय वस्तु के साथ-साथ संगीतात्मकता की पूर्ति की दृष्टि से कई बार साखियों में एक या दो चरण बढ़ा भी दिए जाते हैं । इस प्रकार छन्दों में चरण बढ़ा देने की परम्परा के मूल वेदों में भी देखे जा सकते हैं । जहाँ अनुष्टुप गायत्री जगती आदि में वर्णों की कमी और अधिकता के कारण विभिन्न रूपाभिव्यक्ति दृष्टिगत होती है । वेदों में तो यहाँ तक मिलता है कि तीन या चार चरणों के छंद में से किसी एक चरण में अगर एक वर्ण बढ़ा दिया या घटा दिया तो छंद का नाम भी बदल जाता है ।

छः चरणों वाली साखी का एक और उत्कृष्ट उदाहरण हमें रवि साहब की साखियों में देखने को मिलता है । उन्होंने चौपाई के अन्त में साखी लिखने की परम्परा का अनुसरण करके कड़वु 13 वु॰ के अन्तर्गत एक चौपाई में छः चरण की एक साखी लिखी है, उसमें अद्वैत रस की चर्चा की गई है । उदाहरणार्थ साखी प्रस्तुत है -

साखी - अद्वैत रस अपार छे, ब्रह्म रहयो भरपूर
परा पश्यंती मध्यमा, तें नु कहुं भुल मंडण,
बोले सो बीजों नहीं, ते वैखरी वचन प्रमाण ।[1]

इसके पश्चात् पूरे ढाल में अद्वैत रस की चर्चा की गई है । अपनी उक्ति के प्रमाण स्वरूप कवि ने वेद और उपनिषदों की सहायता ली है ।

प्रीतम ने "गुरू महिमा" कृति के आरम्भ में ही दो साखियाँ लिखी हैं और रचना के अन्त में भी दो साखियाँ हैं । इन कुछ एक साखियों के सिवाय पूरी कृति मोतीदाय छन्द में है इससे साखी लिखने की एक विशिष्ट परम्परा

---

§1§ रविभाण सम्प्रदाय - §पृ0 23§

4

का प्रमाण मिलता है । संक्षिप्त और सूत्रात्मक साखियों में गुरू को महत्त्व दिया गया है और उनको ज्ञानप्राप्ति का माध्यम बताया गया है । छंद में गुरू को ब्रह्म कहा गया है और उसकी सहायता के बिना इस संसार रूपी भव-सागर से पार पाना असम्भव कहा गया है । अतः इससे स्पष्ट होता है कि मिताक्षरी या सामासिक साखियों में छंद के मूल आशय को विस्तार से स्पष्ट किया गया है ।

प्रीतम ने "महिना" नामक कृति में सोरठो के पूर्व साखियाँ लिखी है । आरम्भ की चार साखियाँ राग सोरठ में लिखी गई है ।

कवि गिरिधर की साखियाँ विभिन्न राग रागिनियों में है और भिन्न-भिन्न छोटे-बड़े रूपों में है । राग सोमरी में लिखी साखियों में गुरू की महत्ता प्रतिपादित की गई है ।

वंदु श्री गुरू पद कमल चरणे नमु सीस,
चरण कमल रज सीर धर सुष दायक जगदीस ।[1]

"साखी" शीर्षक के अन्तर्गत भी अनेक साखियाँ गिरधर ने लिखी है और पद राग तथा ढाल के बाद तथा पूर्व साखी लिखने की परम्परा को उन्होंने अपनी रचना में स्थान दिया है । उनकी साखियों में भी ढाल और पदों की विषय वस्तु का संकेत मिलता है ।

कथावस्तु के विकास में गेयता को चारू बनाने के लिए, संगीतात्मक बनाने के लिए साखी का कथावस्तु के बीच-बीच में प्रयोग का प्राचीन प्रघात रहा है । इसी परम्परा को गुजरात के कवियों ने अपने काव्य में स्थान दिया है अपनी रचनाओं में यथा-स्थान कई साखियों ~~ग~~ के विपुल प्रयोग से उसे रोचक बनाया है ।

----

§1§ कवि गिरधर कृत साखियाँ - §ह0 लि0§

आलोच्य कवियों में ज्ञानीजी, अखा, निर्वाण साहब, प्रीतम, रविसाहब आदि भजनिक संत भी थे । इन भजनिकों ने भजन का आरम्भ करने के पहले धार्मिक, आध्यात्मिक और शान्तिपूर्ण वातावरण उपस्थित करने के लिए भजनोपयुक्त भाव भूमिका निर्माण करने के आशय से भी साखियों का निर्माण करके उसके गायन की पद्धति स्वयं चलायी होगी । अतः भजन के पूर्व साखी गाने की प्रथा का प्रयोग गुजरात के संतों की एक विशेषता है । साखी भक्तिभाव व्यंजक और शिक्षाप्रद सो भी संक्षिप्त और गेय होने के कारण भक्त गणों में भक्तिभाव और तन्मयता की वृद्धि होती है जिससे भजन में उसी रस का संचार होता है जिसे भक्ति रस का नाम दिया जाता है । साखी गान के बाद भजन जब आरम्भ होता है तब भक्तगण तल्लीन होकर भजन का गायन करते हैं । कभी-कभी साखी का पाठ भजन के अन्त में भी होता है जो भक्तिभाव प्रदर्शित करते हैं । इस प्रयोग से भजन की प्रभावता बढ़ जाती है ।

यह प्रयोग कीर्तन में भी किया जाता है । गुजरात के प्रसिद्ध संत जीवणदास रचित ऐसी अनेक साखियाँ हैं जो भक्तिभाव से पूर्ण हैं और कीर्तन के पूर्व आने के कारण उसकी महत्ता बढ़ाती है ।

साखी - कुशल तुम परिवार । आशिष वचन अमतणी ।।
श्यामल वरण सुजान। जाचक भणतो जीवणो ।।[1]

यह साखी राम जन्म के कीर्तन के मध्य लिखी गई है । कीर्तन में एक ही भाव की आवृत्ति होने के कारण कभी-कभी ऊबाउ भी हो जाता है और उसकी रसात्मकता समाप्त हो जाती है । उसमें एक परिवर्तन और भिन्नता लाने के लिए यह साखी लिखने की परम्परा का प्रयोग गुजरात के संतों ने किया

---

(1) उदाधर्म पंचरत्न माला - (पृ० 256)

है । साखी के बाद कभी-कभी रागों में भी परिवर्तन आ जाता है । जैसे - राग असावरी के बाद एक साखी है और फिर राग परिवर्तन होकर राग घुमार में दूसरा कीर्तन आरम्भ हो जाता है । इसी क्रम में राग मारू तथा धन्याश्री आते है ।[1]

कभी-कभी रचना के मध्य साखी लिखने की विधा से कथावस्तु में गतिशीलता आ जाती है । श्रीकृष्णदास द्वारा रचित "ज्ञान महिमा", "विश्राम" में लिखा गया है । प्रत्येक विश्राम के पूर्व एक साखी लिखी गई है । उससे रचना में एक गतिशीलता आ गई है । अपने गुरू जीवणदास की महिमा लिखने के साथ-साथ उनकी महिमा का गान भी कवि ने इस साखी में किया है -

परम पुरूष प्रगट भये । सतगुरू जीवण आय ।
माया काल निकंदके । प्रकट किये रघुराय ।।[2] ।2

अपने गुरू की महत्ता बखानने के साथ-साथ कवि ने उनका संघ में आना और शिष्यों को उपदेश देना । इस भवसागर से छुटकारा पाने का मार्ग बताने के लिए जो द्वापर युग में मथुरा के वासी थे उन्होंने ही इस भूमंडल में आने की कृपा की । इस प्रकार की कथावस्तु के बीच पहला विश्राम समाप्त होता है और साखी लिखकर कवि दूसरा विश्राम आरम्भ करते हैं । कथावस्तु में फिर परिवर्तन आ जाता है -

विश्राम ।। 2 ।।

अव सुनो पाटण का विस्तारा । भगत काज हरि आप सिधारा ।।१।।

इस नये कथावस्तु के साथ पूरा विश्राम चलता है और एक साखी के बाद पुनः तीसरा विश्राम आरम्भ होता है । इस प्रकार साखी के प्रयोग के कारण कथा वस्तु रोचक लगती है । भक्तगण रचना का श्रवण करते समय विभिन्न रसों का

---

(1) उदाधर्म पंचरत्न माला - (पृ0 258)
(2) उदाधर्म पंचरत्न माला - (पृ0)

आस्वादन करते हैं इसके अतिरिक्त एक महत्वपूर्ण बात यह है कि साखियों के इस यथास्थान विनियोग के कारण पूरी रचना में अन्विति भी बनी रहती है । कृष्णदास ने अपनी परचरी दोहों से आरम्भ किया था परन्तु बाद में चौपाई और साखियों से परचरी को सम्पूर्ण किया । विभिन्न रूपों में साखियों का प्रयोग करके कृष्णदासजी ने अपनी रचना पद्धति की विशेषता का परिचय दिया है ।

गुजरात के प्रसिद्ध संत कवि छोटमजी के "प्रकीर्ण भजन" के अन्तर्गत अनेक साखियाँ मिलती हैं । भजन का आरम्भ ही उन्होंने साखी से किया है । साखी का अध्ययन करने पर ऐसा लगता है यह साखी राग गौडी में लिखी गई है है -

> गोडी गुरू ने शोधवा, दौडी देश-देश ।
> कोडी लोधी हाथमां, जोइ पारसनो वेश ।।

इस प्रकार भजन के मध्य साखी लिखकर भजन की महत्ता को कवि ने बढ़ाया है । इसी प्रकार से कई संतों की वाणियों में विभिन्न प्रकार के रागों में भी साखियाँ लिखने की परम्परा के प्रमाण मिलते हैं ।

कबीर परम्परा के मुख्य संत रविसाहब ने भी साखियों का प्रयोग ढाल के अन्त में किया है । ढाल का सारांश साखी में निहित है ।

(इ) <u>कहावतों में प्रयोग</u> :

साखियों का एक और भिन्न प्रयोग भी मिलता है जिसमें साखियों का प्रयोग कहावत कथन के रूप में किया गया है । कुछ ऐसी साखियाँ भी मिलती है जिन्हें स्वतंत्र कहावत के रूप में प्रयोग किया गया है । निती, कथन, सदाचार, व्यवहारिक सूझ-बूझ आदि के निदर्शन के रूप में भी साखियों का उपयोग करने का जन सामान्य में प्रधात मिलता है । ऐसी साखियाँ दोनों भाषाओं (हिन्दी - गुजराती) में विपूलता से मिलती है ।

साखी अपनी अर्थ गर्भिता के कारण चुटिलापन, सूत्रात्मकता, गहरी व्यंजकता और कम और छोटे शब्दों के कारण जन मानस में घर कर जाती है । यही

कारण है कि कबीर, रहीम, तुलसी आदि की साखियाँ आज भी कहावतों के रूप में व्यवहृत होती रहती है। गुजरात के साखिकारों के साखियों की भी यही विशेषता है कि इनका गुजरात के दूर दराज के गाँवों, नगरों के अनपढ़ और ~~कुछि~~ सुशिक्षित लोगों में मुक्तता से व्यवहार होता है। इन साखिकारों में विशेषत: अखा, धीरा, निरांत, प्रीतम, राजे आदि की साखियाँ और कुछ अंश कहावतों के रूप में व्यवहृत होते हैं।

गुजराती का एक प्रसिद्ध कहावत "गोपालभाई नी गोपवणी; ने पाग बाँधे उपरणो" का प्रयोग साखियों में किया गया है। अर्थात् उपरोक्त कहावत का भावार्थ रचयिता ने साखी में प्रयोग किया है। उदाहरण स्वरूप साखी प्रस्तुत है -

साखी - मोटा-मोटा पागड़ बाँधे, माहे धाले गामा,
लवा दवानुं नाम नहीं, ने वात करवामा आभा
गोपा भाई नी गोपवणी, पागड़ी न आपी आछी
काँ तो शीखव गोपवणी, नहीं तो ले तारी पाछी।[1]

"गोपवणी" शब्द को कवि ने चतुर व्यक्ति की चतुराई कहा है ऐसा प्रतीत होता है। अर्थात् चतुर व्यक्ति चतुराई के द्वारा अपने अवगुण या अभाव को छुपा जाता है। अत: कवि उसकी इस चतुराई का कायल होकर उसके उस वृत्ति को सिखना चाहता है, अन्यथा कवि उससे संबंध नहीं रखना चाहता है। भावार्थ और व्यंगार्थ दोनों स्पष्ट हैं। बड़ी कुशलता के साथ कवि ने इस कहावत को साखी में प्रयोग किया है। एक अन्य कहावत उदाहरण स्वरूप दृष्टव्य है यह कहावत हिन्दी में भी प्रचलित है -

"दिल्ली का लड्डु जो खायेगा वो भी पछतायेगा और
जो नहीं खायेगा वो भी पछतायेगा।"

---

[1] गुजराती कहेवात संग्रह अने प्राचीन दोहराओ अने साखियो - पृ0 126

कवि ने इस कहावत को इस प्रकार प्रस्तुत किया है -

लक्कड़ के लाड्डु खायेगा वो पस्तायेगा, नहीं खायेगा वो भी पस्तायगा ।

साखी - राजा भी दुखिया, रंक भी दुखिया, महिपति दुखिया विकार में
बिना विवेक भेख भी दुखिया, औधा एक संत सुखी संसार में ।[1]

अर्थात् विवेकहीन व्यक्ति दुःख पाता है क्योंकि लक्कड़ के लाड्डु पचते नहीं । अतः कष्ट देते हैं उसी प्रकार राजा और रंक दोनों ही कष्ट पाते हैं अपनी अज्ञानता के कारण इस प्रकार दुनिया में एक संत सुखी है जो भक्ति भाव से प्रेरित होकर ईश्वर के ऊपर आस्था रखता है । अपनी ज्ञान और बुद्धि प्रयोग के द्वारा वह "लक्कड़ के लाड्डु" भक्षण करने में विश्वास नहीं रखता । वह रमता जोगी संसार में सुखी है ।

इस प्रकार के कुछ और उदाहरण प्रस्तुत है -

"मुख में राम बगल में छुरी, भगत थया पण दानत बूरी"

इस कहावत का प्रयोग कवि ने निम्न साखी में कुशलतापूर्वक किया है -

साखी - पारधी बन्यो सत्संगी, भाले तिलक निशानी
भगवा पहेर्यो कंठी बांधी, ए राख सेली नेवानी

मुख मीठां मनमा कपट, स्वार्थ लगी सगई छे ।
कदी जोखमकारी जीवने मूर्खनी मित्राई छे ।

एक अन्य महत्त्वपूर्ण साखी प्रस्तुत है -

साखी - लाख गमावी साख रखावी, साखे मलशे लाख
लाख राखीने साख गमावे, साख गये सहु खाक ।

---

(1) गुजराती कहेवात संग्रह अने प्राचीन दोहराओ अने साखियो - (पृ० 120)

उपरोक्त उदाहरण से ज्ञात होता है कि गुजरात के साखिकार न केवल साखी लिखने में माहिर थे अपितु उनको शिक्षाप्रद तथा भाव प्रवण बनाने के लिए समाज में प्रयुक्त कहावतों के अर्थानुरूप उनको साखियों में ढालकर लोक भोग बनाया । ऐसी साखियों का प्रयोग सोरठा, वेत, जोड़तनु, दोहरा आदि के साथ किया गया मिलता है ।

अब हम साखियों में विभिन्न भाषा, कहावतों तथा न्यायों के प्रयोग की चर्चा करेंगे ।